

बी.ए.पी.एस. स्वामिनारायण संस्था



युवा

अधिवेशन

2019

अमृतबिंदु

(प्रश्नोत्तरी के लिए वचनामृत बिंदु)



सत्संग प्रवृत्ति - मध्यस्थ कार्यालय

अनुक्रमणिका

प्रकरण-1 : वचनामृत संक्षिप्त परिचय.....	05
प्रकरण-2 : वचनामृत बिंदु.....	11
कलश-1 : पंचभेद	11
कलश-2 : अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना	11
कलश-3 : भगवान के स्वरूप को जानने की आवश्यकता.....	12
कलश-4 : भगवान सर्व कर्ताहर्ता.....	14
कलश-5 : भगवान सदा साकार	16
कलश-6 : भगवान सर्वोपरि.....	18
कलश-7 : प्रकट भगवान की अनिवार्यता	19
कलश-8 : अक्षरब्रह्म द्वारा भगवान का प्राकट्य	20
कलश-9 : भगवान में दिव्यभाव	23
कलश-10 : निर्दोषबुद्धि	24
कलश-11 : भगवान का सुख	26
कलश-12 : अक्षरब्रह्म.....	27
कलश-13 : निश्चय / निष्ठा.....	29
कलश-14 : पूर्णकाम.....	31
कलश-15 : भक्ति.....	32
कलश-16 : स्मरण भक्ति.....	35
कलश-17 : समर्पण भक्ति.....	35
कलश-18 : सेवा	37
कलश-19 : प्रीति.....	38
कलश-20 : धर्म-नियम.....	42

कलश-21 : सांख्यविचार.....	46
कलश-22 : आत्मज्ञान.....	48
कलश-23 : सम्बंध की महिमा का विचार.....	53
कलश-24 : पक्ष.....	55
कलश-25 : अवगुण त्याग - गुणग्रहण	56
कलश-26 : दासभाव	58
कलश-27 : ईर्ष्या	63
कलश-28 : मान.....	64
कलश-29 : क्रोध.....	64
कलश-30 : आलस्य	66
कलश-31 : कामवासना.....	66
कलश-32 : स्वभाव टालने के उपाय.....	68
कलश-33 : निष्काम.....	71
कलश-34 : प्रसन्नता	73
कलश-35 : कथावार्ता	76
कलश-36 : अंतर्दृष्टि.....	79
कलश-37 : निष्कपट.....	82
कलश-38 : पुरुषार्थ.....	83
कलश-39 : प्रार्थना.....	84
कलश-40 : सत्संग	84
कलश-41 : युवकों को विशिष्ट उपदेश	86
कलश-42 : भगवान स्वामिनारायण का व्यक्तित्व.....	87
कलश-43 : प्रकीर्ण	92

प्रकरण-1 : वचनामृत सक्षिप्त परिचय

- भगवान स्वामिनारायण की तेज के प्रवाहरूप परावाणी के अमृत को प्राप्त करके 'वचनामृत' ग्रंथरूप में भेंट देनेवाले परमहंस - सद्.गोपालानंद स्वामी, सद्.मुक्तानंदस्वामी, सद्. नित्यानंदस्वामी और सद्. शुकानंदस्वामी के ऋण को विश्व कभी चुका नहीं सकेगा। जीवन की हर पल में मार्गदर्शन बना रहे ऐसा यह उपदेश इन चार परमहंसो ने अनेक दुविधा के बिच लिखा है। दीपक-मशाल के उजाले में, सामान्य कागज पर, कलम द्वारा, इस परावाणी को लिखते हुए इन परमहंसो के पुरुषार्थ की कल्पना से ही उनके चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं। प्रत्येक वचनामृत के प्रारंभ में इन परमहंसो ने लिखे हुए वर्ष, माह, पक्ष, तिथि, स्थल, श्रोता, घटना, श्रीजी महाराज के

वस्त्राभूषण-बेठक, उन्होंने किये गये फल, पुष्प, माला आदि के वर्णन की नोट वचनामृत को विश्वसाहित्य में ऊच्च कक्षा में रख दे ऐसी है।

- वचनामृत के चारों संपादक परमहंस अति प्रमाणभूत और प्रामाणिक थे। सद्. नित्यानंदस्वामी ने 'वचनामृत' ग्रंथ भगवान स्वामिनारायण को अर्पण किया तब भगवान स्वामिनारायण ने उसे प्रमाणित करके दिया, जिसका वर्णन वचनामृत लोया-7 में है।
- वचनामृत ग्रंथ लोकभोग्य सरल गुजराती गद्यपद्धति में रचित होने से उसे समझने में बहुत ही सरल है। श्रीजीमहाराज ने आध्यात्मिक गूढ और सूक्ष्मतम बातों को समझने के लिए विविध दृष्टांत, पौराणिक आख्यान या पात्र, रूपक, कहावत, तर्क-दलील आदि का उपयोग

वचनामृत में सहजरूप से किया है। और संतो-भक्तों के साथ प्रश्नोत्तरी शैली द्वारा अद्भुत रूप से अमृत परोसा है।

- प्रथम वचनामृत उद्बोधन : सं. 1876 मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्थी : ग.प्र.1
- अंतिम वचनामृत उद्बोधन : सं. 1886 अषाढ कृष्णा दशमी : ग.अं. 39
- वचनामृत ग्रंथ में
 - भगवान के कृपावचन - 162 है।
 - भगवान द्वारा पूछे गये प्रश्न - 138 है।
 - सबसे अधिक प्रश्न मुक्तानंद स्वामी ने पूछे है। (91 प्रश्न)

वचनामृतों की संख्या

गढडा प्रथम प्रकरण के	-	78
सारंगपुर के	-	18
कारियाणी के	-	12
लोया के	-	18
पंचाला के	-	7
गढडा मध्य प्रकरण के	-	67
वरताल के	-	20
अहमदाबाद के	-	3
गढडा अंत्य प्रकरण के	-	39

262

- इसके अलावा अधिक 11 वचनामृत भी हैं, जिसमें अहमदाबाद के -5, जेतलपुर के -5 और अश्लाली का -1 वचनामृत है। इसे मिलाकर कुल 273 वचनामृत होते हैं।

■ गुणातीत गुरुओं ने वचनामृत की महिमा का अद्भुत गान किया है।

(1) गुणातीतानंदस्वामी : 'इस वचनामृत में चार वेद, खटशास्त्र और अठारह पुराणों का सार है।' (स्वामी की बात : 6/18)

(2) ब्रह्मस्वरुप शास्त्रीजी महाराज : 'समग्र शास्त्रों के सार रुप वचनामृत का ग्रंथ श्रीजीमहाराज ने हमें दिया है। वचनामृत में सर्वोपरि ज्ञान है।'

(3) ब्रह्मस्वरुप योगीजी महाराज : 'वचनामृत श्रीजीमहाराज की परम अमृतवाणी है। उसका जो पान करेगा उन्हे श्रीजीमहाराज अपने पास बिठायेंगे। जो वचनामृत का 108 बार पाठ करेगा उन्हे श्रीजीमहाराज साक्षात् दर्शन देंगे ऐसा बड़े सद्गुरु कहते थे। उसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और महिमा संबंधी पांच बातें आती हैं। उसमें मोक्ष का द्वार संत को ही बताया है। महाराज ने वह अनादि संत मूल अक्षरमूर्ति

गुणातीतानंदस्वामी को बताये है।’

(4) ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज : ‘वचनामृत में सभी शब्द आ जाते हैं। कोई बात अविद्वान नहीं रखी है। उनके जैसा कोई ग्रंथ नहीं है। उनके सिवा अन्य में प्रतीति आ जाये वह मोह है। महाराज ने उसमें वेद-वेदांत का सार बताया है।’

(5) प्रकट ब्रह्मस्वरूप महंतस्वामी महाराज :
- ‘मोक्ष की बात अन्यत्र कहीं कहीं बिखरी हुई पड़ी हो, उसे खोजना पड़े, परंतु वचनामृत में श्रीजीमहाराज ने तो ठोस रूप से मोक्ष की और एकांतिक धर्म की बात एक साथ ही दी है।’
- ‘यह वचनामृत सभी शास्त्रों के साररूप है। वचनामृत में अक्षररूप होकर परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण की शुद्ध उपासना और एकांतिक धर्म का स्पष्ट निरूपण किया है। किसी भी मुमुक्षु को साधना की सफलता के लिए वचनामृत में से यथार्थ मार्गदर्शन प्राप्त होता है।’

प्रकरण-2 : वचनामृत बिंदु

कलश-1 : पंचभेद

1. पुरुषोत्तम भगवान, अक्षरब्रह्म, माया, ईश्वर तथा जीव - ये जो पाँच तत्त्व हैं, वे अनादि हैं।
(गढडा प्रथम-7)

कलश-2 : अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना

1. इसके पश्चात् श्रीजीमहाराज ने कहा, 'अष्टावरणों से युक्त ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्मांड जिस अक्षर में अणु की भाँति प्रतीत होते हैं, ऐसा जो पुरुषोत्तम नारायण का धामरूप अक्षर है, उस अक्षर के रूप में स्वयं रहता हुआ जो पुरुषोत्तम की उपासना करता है, उसे उत्तम निर्विकल्प निश्चयवाला कहते हैं।' (लोया-12)
2. उस ब्रह्म से परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण सर्वथा

भिन्न हैं और उस ब्रह्म के भी कारण हैं, आधार हैं तथा प्रेरक हैं। ऐसा समझकर उस ब्रह्म के साथ अपनी जीवात्मा का तादात्म्य स्थापित करके परब्रह्म की स्वामी-सेवक भाव से उपासना करें। इस प्रकार समझने से यही ब्रह्मज्ञान परमपद को प्राप्त करने का निर्विघ्न मार्ग बन जाता है। (गढडा मध्य-3)

3. जो ब्रह्मरूप हुआ है, उसे ही पुरुषोत्तम की भक्ति करने का अधिकार है। (लोया-7)
4. ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की भक्ति नहीं करता, उसके सम्बंध में यही कहा जाएगा कि उसका भी आत्यन्तिक कल्याण नहीं हुआ। (लोया-7)

कलश-3 : भगवान के स्वरूप को जानने की आवश्यकता

1. जब भगवान के ऐसे स्वरूप को दृढ़तापूर्वक समझेंगे तो आपको किसी भी प्रकार का विघ्न

कल्याण के मार्ग में नहीं आएगा; परन्तु यदि उन भगवान के स्वरूप की ऐसी दृढ़ता नहीं होगी, तो आप चाहे जितने उपवास ही क्यों न करें, फिर भी आपकी कमी किसी भी प्रकार से दूर नहीं हो पाएगी। परन्तु भगवान के स्वरूप के ज्ञान को समझने में यदि किसी प्रकार की कसर रह गई, तो किसी भी प्रकार आपकी कमी दूर नहीं हो पाएगी। इसलिए, अपने जीवनकाल में ही जैसे भी बने वैसे इस रहस्य को समझ लेने का उपाय कर लें।

(गढडा मध्य-13)

2. उस स्वरूप को आप भी देखते हैं, परन्तु वह पूर्णतः आपकी समझ में नहीं आता है, इसीलिए जब इस स्वरूप की उपरोक्त वार्ता यथार्थ रूप से समझ में आ जाएगी, तब पंचविषयों या काम-क्रोधादि स्वभावों पर

विजय प्राप्त करने में प्रयास करना नहीं पड़ेगा,
बल्कि वे सहज ही रूप से जीते जाएँगे।
(गढडा मध्य-13)

कलश-4 : भगवान सर्व कर्ताहर्ता

1. परमेश्वर देश, काल, कर्म और माया की सत्ता को जितना चलने देते हैं, उतनी हद तक ही उनकी गतिविधि रहती है, किन्तु परमेश्वर की इच्छा के प्रतिकूल किसी का लेशमात्र भी नहीं चल पाता। इसलिए सर्वकर्ता तो एक परमेश्वर ही हैं। (गढडा मध्य-21)
2. 'भगवान के भक्त को जिस-जिस प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है, उन दुःखों को देनेवाला काल, कर्म और माया में से कोई भी नहीं है, किन्तु स्वयं भगवान ही अपने भक्त का धैर्य देखने के लिए इन दुःखों को प्रेरित

करते हैं। जैसे कोई पुरुष पर्दे के पीछे रहकर आगे की ओर देखता है, वैसे ही भगवान भी भक्त के हृदय में रहकर उसके धैर्य को देखते रहते हैं। लेकिन काल, कर्म और माया की क्या मजाल है कि वे भगवान के भक्त को पीड़ित कर सकें? वह तो भगवान की ही ऐसी इच्छा है, ऐसा समझकर भगवान के भक्त को आनंदमग्न रहना। (गढडा मध्य-62)

3. जब हमने अपना तन-मन-धन भगवान को अर्पित कर दिया, तब परमेश्वर की इच्छा ही हमारा प्रारब्ध हो गया! इसके अतिरिक्त कोई अन्य प्रारब्ध नहीं हो सकता। इसलिए, भगवान की इच्छा के अनुसार चाहे कैसा भी सुख-दुःख आये, परन्तु हमें व्याकुल नहीं होना है। 'जिसमें भगवान की प्रसन्नता है, उसमें ही हमारी प्रसन्नता!' इसी प्रकार रहना है। (गढडा अंत्य-13)

कलश-5 : भगवान सदा साकार

1. उस तेज में एकमात्र भगवान की मूर्ति ही दिखाई पड़ती है, जो अत्यन्त प्रकाशमय है; यद्यपि वह मूर्ति घनश्याम है, परन्तु वह अतिशय तेज के कारण श्याम नहीं, बल्कि अत्यन्त श्वेत दिखाई पड़ती है। और वह मूर्ति द्विभुज है। उस मूर्ति के दो चरण हैं। वह अतिशय मनोहर है। वह मूर्ति चतुर्भुज अथवा अष्टभुज या सहस्रभुज नहीं है। वह मूर्ति अतिसौम्य है, और मनुष्य के जैसी उसकी आकृति है। (गढडा मध्य-13)
2. भगवान पुरुषोत्तम सदैव साकार ही हैं, परन्तु निराकार नहीं हैं ! फिर भी, उन्हें जो निराकार कहते हैं, वे ना-समझ लोग ही हैं। (गढडा प्रथम-45)

3. कोई सर्वगुणसम्पन्न पुरुष हो, और यदि वह भगवान को अलिंग समझता हो, परन्तु मूर्तिमान न मानता हो, तो यह एक बड़ा दोष है, जिसके कारण उसके समस्त गुण दोषरूप हो जाते हैं। (लोया-16)
4. श्रुतियों में तो ऐसा बताया गया है कि 'परमेश्वर तो कर-चरणादि से रहित और सर्वत्र पूर्ण हैं।' तो ऐसा जो यहाँ श्रुतियों ने करचरणादि का जो निषेध किया है, वह मायिक कर-चरणादि का निषेध है; परन्तु भगवान का आकार दिव्य है, मायिक नहीं है। (गढडा प्रथम-45)
5. परन्तु भगवान का स्वरूप निराकार नहीं है, क्योंकि भगवान से ही समस्त स्थावर-जंगम सृष्टि होती है। यदि भगवान निराकार होते, तो उनसे साकार सृष्टि कैसे संभव हुई होती? जैसे आकाश

निराकार है, तो उससे पृथ्वी द्वारा जैसे घटादिक आकार होते हैं, वैसे नहीं होते, उसी प्रकार ब्रह्मादि सृष्टि साकार है, तो उसके कर्ता परमेश्वर भी साकार ही हैं। (गढडा मध्य-10)

कलश-6 : भगवान सर्वोपरि

1. और, ये अक्षरातीत जो पुरुषोत्तम भगवान हैं, वे ही समस्त अवतारों के कारण हैं; और ये सभी अवतार पुरुषोत्तम में से प्रकट होते हैं और पुरुषोत्तम में ही पुनः लीन हो जाते हैं।
(गढडा मध्य-13)

2. अनेक जीवों के प्राण एवं नाडी को खींचकर उन्हें तत्काल समाधिस्थ कराना यह अन्य किसी से नहीं हो सकता, और, लक्षावधि मनुष्यों के द्वारा नियमों का पालन कराकर उन्हें अपने वश में रखना यह भी अन्य किसी के बस की बात नहीं है, तथा अक्षरादि मुक्तों

को भी नियमबद्ध रखने की क्षमता रखना, यह सामर्थ्य भी अन्य किसी में संभव नहीं है, अतः ये ही श्रीपुरुषोत्तम भगवान के असाधारण लक्षण हैं। (अहमदाबाद-5)

कलश-7 : प्रकट भगवान की अनिवार्यता

1. इस जीव को जब भरतखंड में मनुष्यदेह मिलती है तब भगवान के अवतार या भगवान के साधु निश्चित रूप से पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। यदि जीव को उनकी पहचान हो जाए, तो वह जीव भगवान का भक्त हो जाता है। (वरताल-19)
2. और, जीव का कल्याण हो जाए तथा जीव माया को पार करके ब्रह्मरूप हो जाए, इसका कारण पुरुषोत्तम वासुदेव भगवान के प्रत्यक्ष स्वरूप का ज्ञान, ध्यान, कीर्तन तथा कथा

आदि ही हैं। इन उपायों के द्वारा ही जीव माया को पार करके अति महत्ता को प्राप्त कर लेता है तथा भगवान के अक्षरधाम को प्राप्त कर लेता है। (गढडा मध्य-32)

3. अतः जो पुरुष इन्द्रियों, अन्तःकरण तथा अनुभव द्वारा भगवान को यथार्थरूप से जान लेता है, उसे ज्ञानी कहते हैं। (लाया-7)

कलश-8 : अक्षरब्रह्म द्वारा भगवान का प्राकट्य

1. पुरुषोत्तम भगवान, अपनी कारणता होने से अन्तर्यामी रूप से सबमें तारतम्यपूर्वक रहते हैं। जिस प्रकार वे अक्षर में हैं, उस प्रकार प्रकृतिपुरुष में नहीं हैं। उसी प्रकार पुरुषोत्तम भगवान भी जिसके द्वारा जो कार्य करना है, उतने सामर्थ्य के साथ ही उसमें रहते हैं।

अक्षर तथा पुरुष-प्रकृति आदि सबमें पुरुषोत्तम भगवान् अन्तर्यामी रूप से रहते हैं, परन्तु पात्र के तारतम्य से सामर्थ्य में तारतम्य रहता है।

(गढडा प्रथम-41)

2. जैसे कोई राजा तथा उसकी रानी हो, तब जितनी परिधि में राजा का राज्य है, उतनी ही परिधि में रानी का राज्य भी कहलाता है और राजा का जैसा हुक्म चलता है, वैसा ही रानी का भी हुक्म चलता है। ठीक उसी प्रकार भगवान् का जैसा प्रताप है, वैसा ही उस साधु का भी प्रताप है। (गढडा मध्य-22)
3. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि अनेक शुभगुणों से सम्पन्न जो भक्त हो, उसके हृदय में भगवान् निवास करते हैं। फिर ऐसा भक्त भगवान् के प्रताप से अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है और असंख्य जीवों का उद्धार करता

है। तथा ऐसा सामर्थ्य रखने पर भी वह अन्य जीवों द्वारा किए गए मान एवं अपमान को सहन करता है। ऐसी सहनशीलता भी एक प्रकार का सामर्थ्य ही है, क्योंकि समर्थ होते हुए भी क्षमा करना, किसी से भी सम्भव नहीं हो सकता। अतः ऐसी तितिक्षा-क्षमा रखनेवाले को अति महान समझना।

तथा वह समर्थ भी कैसा है? तो उसके नेत्रों द्वारा देखनेवाले स्वयं भगवान ही हैं। अतः ब्रह्मांड में जितने प्राणी हैं, उन सबके नेत्रों को प्रकाशवान करने में वह समर्थ होता है। उसके पैरों से चलनेवाले भगवान हैं, अतः वह ब्रह्मांड के समस्त जीवों के पैरों में चलने की शक्ति देने में समर्थ होता है। इसी प्रकार, उस सन्त की सभी इन्द्रियों में भगवान का निवास है, इसलिए वह ब्रह्मांड के समस्त जीवों की

इन्द्रियों को प्रकाश देने में समर्थ होता है।
अतएव, ऐसे संत संपूर्ण जगत के आधार-रूप
हैं। (ग.प्र.27)

कलश-9 : भगवान में दिव्यभाव

1. भगवान में ऐसा दिव्यभाव नहीं मानता, तब तक उसको बात-बात में बुरा लगता है। वह भगवान में समय-समय पर गुण और दोष देखा करता है और यह समझता है कि 'भगवान इसका पक्ष लेते हैं और हमारा ध्यान नहीं रखते, इसको अधिकाधिक बुलाते हैं और हमें नहीं बुलाते, इस पर अधिक स्नेह रखते हैं, किन्तु हमसे स्नेह नहीं करते।' इस प्रकार वह गुण और दोष देखा करता है, इसी कारण उसका अन्तःकरण दिन-प्रतिदिन सत्संग से पिछड़ने लगता है और अन्त में वह विमुख हो जाता है। (लोया-18)

2. अतः अपने में कुछ थोड़ी-बहुत न्यूनता हो, वह जीव को अधिक बाधा नहीं डालती, किन्तु परमेश्वर के चरित्र में किसी भी प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो गया अथवा परमेश्वर का किसी भी तरह से अवगुण दिखाई दिया, तो उस जीव का कल्याण-मार्ग से तत्काल पतन हो जाता है। (वरताल-12)

कलश-10 : निर्दोषबुद्धि

1. अपने आपमें चाहे कैसे भी बुरे स्वभाव हों, पर यदि वह भगवान को अतिशय निर्दोष समझें तो स्वयं भी अत्यन्त निर्दोष (दोषरहित) हो जाता है। (गडडा प्रथम-24)
2. दिव्य चरित्रों में तो पापीजनों तक को दिव्यता प्रतीत होती है, परन्तु जब भगवान प्राकृत चरित्र करें, तब भी जिसको दिव्यता दिखाई पड़े, वही परमेश्वर का सच्चा भक्त है। (गडडा मध्य-10)

3. भगवान को इस प्रकार समझें कि 'ये समर्थ हैं, अतः वे जो कुछ करते हैं, ठीक ही करते होंगे।' इस प्रकार जो भगवान को निर्दोष समझता हो, वही माया को पार हो चुका कहलायेगा। (लोया-4)
4. यदि वह बड़े सत्पुरुष के गुणों का ग्रहण कर ले और ऐसा माने कि 'सत्पुरुष जो जो स्वभाव रखते हैं, वह तो जीवों के कल्याण के लिए हैं। बड़े सत्पुरुष तो निर्दोष हैं। मुझे उनमें जो दोष दिखाई पड़ा, वह तो मेरी कुमति की कल्पनामात्र है।' ऐसा विचार करके सत्पुरुष के गुणों को ग्रहण करें और अपने अपराध के लिए उनसे क्षमायाचना करें। ऐसा करने से उस पुरुष की मलिनता मिट जाती है। (सारंगपुर-18)

कलश-11 : भगवान का सुख

1. उनके सुख के आगे अनन्त रूपवती स्त्रियों को देखने का सुख भी तुच्छ हो जाया करता है। और, इह तथा परलोक सम्बंधी जो पंचविषयों का सुख है, वह भगवान की मूर्ति के सुख के आगे तुच्छ हो जाते हैं, ऐसा भगवान का स्वरूप है। (लोया-18)
2. जैसे कोई बड़ा धनी गृहस्थ हो और अपने घर में अनेक प्रकार के भोजन लेता हो, भोजन के बाद यदि वह अपनी बची हुई उच्छिष्ट रोटी का कुछ टुकड़ा कुत्ते के आगे डाल दे, तो वह तो अत्यन्त तुच्छ कहलाएगा, और स्वयं जो भोजन करता हो, वह महासुखमय कहलाएगा। वैसे ही भगवान ने ब्रह्मांडों में अनेक जीवों को जो पंचविषय सम्बंधी सुख दिया है, वह कुत्ते को डाले गए रोटी के टुकड़े के समान अत्यन्त तुच्छ

है, तथा भगवान सम्बंधी जो सुख है, वह तो अतिशय महान है। (गढडा अंत्य-39)

3. भगवान का जो एक निमेषमात्र का दर्शन हो, उस पर अनन्तकोटि ब्रह्मांडों के सभी विषयसुखों को न्योच्छावर कर दें, फिर भगवान के एक रोम में जितना आनन्द समाया है, उतना आनन्द अनन्तकोटि ब्रह्मांडों के विषयसुखों को इकट्ठा करने पर भी उनके कोटि के एक भाग के बराबर भी नहीं होता। (सारंगपुर-1)

कलश-12 : अक्षरब्रह्म

1. भगवान जीव के कल्याण के लिए जब मूर्ति धारण करते हैं, तब वे अपने अक्षरधाम एवं चैतन्यमूर्ति पार्षदों तथा समस्त निजी ऐश्वर्यों सहित ही पधारते हैं, परन्तु वे दूसरे लोगों को दिखाई नहीं पड़ते। भगवान के भक्तों को चाहिए कि वे भगवान का स्वरूप अक्षरधाम

सहित पृथ्वी पर विराजमान है ऐसा समझें
और दूसरों के समक्ष भी ऐसी ही वार्ता करें।

(गढडा प्रथम-71)

2. यह ब्रह्म प्रकृति-पुरुष आदि सबका कारण है तथा आधार है और अन्तर्यामी शक्ति द्वारा सबमें व्यापक है। (गढडा मध्य-3)
3. अक्षरधाम के आश्रय में अनन्तकोटि ब्रह्मांड रहते हैं। (गढडा मध्य-64)
4. जीव को देह, इन्द्रियों तथा विषयों का अधिक संग हुआ है। अतः संगदोष के कारण यह जीव देहादिरूप हो गया है। जब यह जीव उनके संग को छोड़कर यह समझने लगता है कि 'माया से मुक्त तथा माया से परे रहनेवाला ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है और इसी प्रकार निरंतर मनन करते हुए यदि वह ब्रह्म का संग करता है, तो ब्रह्म का गुण उस जीव में आ जाता है। (गढडा मध्य-31)

5. पंचविषय सम्बंधी जो अन्य पदार्थ हैं, उनमें से कुछ भी उसे बन्धनकारी नहीं बनता। क्योंकि उसने तो पहले से ही सबका परिमाण कर रखा है कि 'भगवान तो ऐसे हैं, तथा ऐसा उन भगवान के भजन, स्मरण एवं कथा-वार्ता में माल (सुख) है तथा अक्षर तो ऐसा है और उस अक्षर का सुख ऐसा है। (लोया-17)

कलश-13 : निश्चय / निष्ठा

1. महत्ता तो प्रत्यक्ष भगवान के निश्चय से तथा उन भगवान की आज्ञा का पालन करने में है। जो पुरुष इन दोनों बातों पर ध्यान नहीं देता, वह व्यावहारिक दृष्टि से चाहे कितना ही बड़ा हो, वह छोटा ही रहता है। (गढडा प्रथम-31)
2. भगवान का दृढ़ आश्रय ही समस्त साधनों में महान साधन है। जिससे भगवान प्रसन्न होते हैं। (गढडा प्रथम-33)

3. जिसे भगवान एवं सन्त का माहात्म्य-ज्ञान सहित निश्चय हो गया हो, वह भगवान तथा सन्त के लिए क्या नहीं कर सकता? उनके लिए वह कुटुम्ब का त्याग करे, लोकलज्जा का त्याग करे, राज्य का त्याग करे, सुख का त्याग करे, धन का त्याग करे, स्त्री का त्याग करे, और स्त्री हो तो वह पुरुष का त्याग करे। जिसको भगवान का माहात्म्यज्ञान सहित निश्चय हो जाता है, वह भगवान के वचन-पालन में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रखता तथा वे जो कुछ कहें, वैसा ही करता है। (लोया-3)
4. जैसे शक्कर मिश्रित दूध में यदि सर्प की लार गिर पड़े और उसे यदि कोई पुरुष पी ले, तो उसका प्राणान्त हो जाता है। वैसे ही माहात्म्य सहित भगवान का निश्चय न हो, ऐसे जीव के

मुख से गीता-भागवत को भी सुने, तो भी किसी का कल्याण नहीं होता, बल्कि उससे तो उसका जड़ से सत्यानाश हो जाता है। (वरताल-12)

5. संसारी जीव को कोई धन देनेवाला या पुत्र देनेवाला मिल जाए, तो उसमें तुरन्त प्रतीति आ जाती है, किन्तु भगवान के भक्त को जन्त्र-मन्त्र, नाटक-नौटंकी आदि किसी के भी प्रति रुचि नहीं होती। यदि हरिभक्त हो और वह जन्त्र-मन्त्र में प्रतीति रखता हो, तो उसे सत्संगी होने पर भी अर्ध विमुख ही समझना चाहिए। (गढडा मध्य-38)

कलश-14 : पूर्णकाम

1. जिसे माहात्म्य सहित निश्चय हो गया है, वह यह समझने लगता है कि 'जिस दिन से मुझे भगवान के दर्शन हुए हैं, उसी दिन से मेरा कल्याण हो चुका है तथा जो जीव श्रद्धापूर्वक

मेरे दर्शन करेंगे तथा मेरे वचनों का पालन करेंगे, उनका भी कल्याण हो जाएगा, तब मेरा कल्याण होने में क्या संशय रहेगा? मैं तो कृतार्थ हूँ, और जो कुछ साधना करता हूँ, वह भगवान की प्रसन्नता के लिए ही करता हूँ।' जो भक्त ऐसा समझने लगता है। (गढडा प्रथम-72)

2. भगवान के भक्त को उग्र वासना को देखकर हिम्मत नहीं हारनी चाहिए और आनन्दमग्न रहकर भगवान का भजन करते रहना तथा वासना को मिटाने का उपाय करते रहना, एवं भगवान तथा उनके सन्त के वचनों में दृढ़ विश्वास रखना। (सारंगपुर-4)

कलश-15 : भक्ति

1. हमारी सेवा करते हैं, उनके हृदय में यदि परमेश्वर की भक्ति न हो, तो उनसे स्नेह करें तो भी हमें स्नेह नहीं होता है। और, यदि

नारदजी के समान गुणवान हो, किन्तु उसमें भगवान की भक्ति न हो, तो वह हमें रुचता नहीं है। (गढडा प्रथम-37)

2. और ऐसा मत समझें कि जो अनेक उपचारों द्वारा भक्ति करता है उसी पर भगवान प्रसन्न हो जाते हैं और गरीब पर प्रसन्न नहीं होते; भगवान तो बहुत दयालु हैं, यदि कोई गरीब भक्त हो, वह भी यदि श्रद्धापूर्वक जल, पत्र, फल, फूल भगवान के लिए अर्पित करता है तो वे इतने पर ही प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि भगवान की महिमा बहुत बड़ी है। जिस प्रकार कोई पुरुष किसी राजा के नाम पर एक श्लोक की रचना करके उसके समक्ष प्रस्तुत करता है, तो राजा उसे गाँव दे देता है, उसी प्रकार भगवान भी तुरन्त प्रसन्न हो जाते हैं। (गढडा अंत्य-25)
3. जिसके हृदय में भगवान की भक्ति होती है, उसकी

ऐसी मनोवृत्ति रहती है कि ' भगवान तथा सन्त मुझे जो-जो वचन कहेंगे, उसी के अनुसार ही मुझे वर्तन करना है । ' 'मैं इतने वचनों का पालन कर सकूँगा और इतने वचनों का पालन मुझसे नहीं हो पाएगा ' ऐसा वचन तो वह भूलकर भी नहीं कहता है । (गढडा प्रथम-15)

4. धर्म, अर्थ तथा काम सम्बंधी फल की इच्छा का परित्याग कर, यदि उन्हीं शुभ कर्मों को भगवान की प्रसन्नता के लिए किया जाए, तो वे ही शुभ कर्म भक्तिरूप होकर केवल मोक्ष के लिए फलदायी हो जाते हैं । (गढडा मध्य-11)
5. भगवान के भजनजन्य आनन्द के आगे तो चौदह लोकों के सुख को नरक-जैसा बताया गया है । (वरताल-16)
6. जिनको भगवान को प्रसन्न करने की इच्छा हो, उनको लोगों को रिझाने के लिए या

किसी से ईर्ष्याभाव रखकर भक्ति नहीं करनी चाहिए, परंतु केवल आत्मकल्याण के लिए ही भक्ति करनी चाहिए। (गढडा अंत्य-6)

कलश-16 : स्मरण भक्ति

1. जिस पुरुष को अपने हृदय में भगवान की मूर्ति निरन्तर रूप से दिखाई देती हो, उसे भी भगवान ने जिस-जिस अवतार में जहाँ-जहाँ पर जो-जो लीलाएँ की हों, उनको स्मरण में रखना, तथा ब्रह्मचारियों, साधुओं एवं सत्संगियों के साथ स्नेह रखना और उन सभी का स्मरण भी रखना चाहिए। (गढडा प्रथम-3)

कलश-17 : समर्पण भक्ति

1. जो गृहस्थ हो, वह अपना सर्वस्व केवल भगवान तथा भगवान के भक्त के लिए ही समर्पित करके रखे, और यदि सत्संग के

लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करने की आवश्यकता पड़ जाए, तो वह अपने प्राण भी अर्पण कर दे। और, अपने इष्टदेव जिस क्षण यह आज्ञा दें कि 'तू परमहंस बन जा,' तो वह तुरन्त परमहंस बन जाए! जिसके ऐसे लक्षण हों, वह हरिभक्तों की सभा में अग्रस्थान ग्रहण करे या पीछे बैठे, परन्तु उसी को समस्त हरिभक्तों में अग्रगण्य समझना चाहिए।

(गढडा मध्य-61)

2. जिसे आत्मकल्याण की इच्छा हो, उसको अपनी देह, धन, धाम तथा कुटुम्ब-परिवार सब कुछ भगवान की सेवा में जोड़ देना चाहिए, तथा भगवान की सेवा में जो भी पदार्थ काम में न आए उनका परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार जो पुरुष भगवत्परायण आचरण करता है, वह

गृहस्थाश्रमी होने पर भी मृत्यु के बाद भगवान के धाम में नारद-सनकादि की पंक्ति में स्थान प्राप्त करता है और वह परम मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। (गढडा मध्य-62)

कलश-18 : सेवा

1. जीवात्मा को बल प्राप्त करने के लिए भगवान तथा भगवान के भक्त की सेवा के बराबर अन्य कोई उपाय नहीं है। (गढडा मध्य-63)
2. जैसे उकाखाचर को सन्त की सेवा करने का व्यसन पड़ चुका है, वैसा ही भगवान तथा भगवान के सन्त की सेवा करने का जिसे व्यसन हो जाए और उसके बिना एक क्षण भी न रहा जाए, तो उसके अन्तःकरण की मलिन वासना पूर्णतः नष्ट हो जाती है। (गढडा मध्य-25)

3. परमेश्वर के नियमों का पालन करते हुए प्रवृत्तिमार्ग में रहना चाहिए। उन्हें परमेश्वर के नियमों का पालन करने में न तो अतिरेक करना है, और न इन नियमों के पालन में किसी तरह की न्यूनता ही रखनी है। और काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा एवं स्वाद आदि विकारों का परित्याग करके भगवान तथा भगवान के भक्त की सेवा के लिए प्रवृत्तिमार्ग में वे लगे रहेंगे, तो उनको किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं होगा।
(वरताल-17)

कलश-19 : प्रीति

1. सत्पुरुष से दृढ़ प्रीति हो, वही आत्मदर्शन का साधन है, सत्पुरुष की महिमा जानने का भी यही साधन है और परमेश्वर के साक्षात् दर्शन सुलभ होने का भी यही साधन है। (वरताल-11)

2. अपनी देह के साथ जीव की जैसी आत्मबुद्धि होती है, वैसी ही दृढ़ आत्मबुद्धि यदि उसे भगवान तथा भगवान के भक्त के साथ हो जाए, तो उसे किसी भी प्रकार का विघ्न विक्षेप नहीं डाल सकता। और, चाहे देशकालादि कितने ही अशुभ हों, तो भी वह भगवान तथा भगवान के भक्त से विमुख नहीं होता। (गढडा अंत्य-11)
3. हनुमान, नारद तथा प्रह्लाद-जैसे जो महान भगवद्भक्त हैं, उन्होंने भी भगवान से यही माँगा है कि 'हे भगवान! अहं-ममत्वरूपी माया से हमारी रक्षा करिएगा और आपसे प्रीति बनी रहे तथा उन साधु का संग बना रहे जो इस माया को तैर गए हैं और जो आपसे प्रीति रखे हुए हैं। ऐसे ही साधु से हमारा स्नेह तथा

ममत्व बना रहे।' अतएव, हमें भी उन भक्तों के समान ही करना और यही माँगना तथा ऐसे शब्दों का ही श्रवण, मनन एवं निदिध्यास करना चाहिए। (गढडा अंत्य-39)

4. सत्पुरुष का प्रसंग ही परमेश्वर में दृढ़ प्रीति होने का कारण होता है। (गढडा प्रथम-44)
5. स्नेह तो रूप से भी होता है, काम से भी होता है, लोभ से भी होता है, स्वार्थ से भी होता है, तथा गुण द्वारा भी होता है। उनमें रूप द्वारा जो स्नेह उत्पन्न होता है, वह देह में पित्त अथवा कोढ़ निकलने पर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार लोभ, काम और स्वार्थ द्वारा उत्पन्न हुए स्नेह का भी अन्त में नाश हो जाता है। किन्तु, गुणों को परख कर जो स्नेह हुआ हो, वह तो अन्त तक रहता है। (सारंगपुर-2)

6. यदि अपने प्रियतम को, अपनी निकटता रहने पर प्रसन्न देखे, तो वह निकट रहे, तथा अपने प्रियतम की मरज़ी उसने दूर रखने की देखी, तो वह दूर रहकर राजी रहेगा। परन्तु किसी भी प्रकार से अपने प्रियतम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। प्रेम का यही लक्षण है।

(कारियाणी-11)

7. पृथ्वी पर प्रकट हुए भगवान के अवतार, उस भगवान से मिले हुए जो संत हैं, उनके साथ जब उसे घनिष्ठ प्रीति हो जाती है, तब उसको सत्पुरुष के सम्बंध में किसी भी प्रकार का दोषाभास नहीं होता। और, लौकिक मार्ग में रीति है, कि जिसको जिसके साथ दृढ़ स्नेह हो जाता है, उसको उसका कोई भी अवगुण नहीं दिखाई पड़ता तथा उसके वचन भी सत्य मानता है। ठीक वैसी ही मोक्ष-मार्ग में भी रीति है। (वरताल-11)

कलश-20 : धर्म-नियम

1. मुझमें दृढ़ विश्वास बनाये रखें और हम जैसा कहें वैसा करते रहें। यदि आप पर कोई भारी कष्ट आ पड़ेगा, तो उससे अथवा सात दुर्भिक्षों-जैसी भीषण विपत्तियों से भी हम आपकी रक्षा करेंगे। हम आपकी ऐसे कष्ट से भी रक्षा करेंगे, जिससे उबरने का कोई उपाय न सूझता हो। लेकिन, शर्त यह है कि आप हमारे सत्संग के धर्म एवं नियमों का अधिकाधिक पालन करते रहें और सत्संग में टिके रहें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे, तो आप भीषण दुःखों के फन्दे में फँस जाएँगे, जिसमें हमें कुछ लेना-देना नहीं है। (जेतलपुर-5)
2. परमेश्वर के वचनों का उल्लंघन करके इधर-उधर भटकता है, तब वह क्लेश को पाता है। यदि वह आज्ञा के अनुसार रहता है, तो उसे

भगवान का जो आनन्द है, वही आनन्द प्राप्त होता है। भगवान के भक्त होते हैं, उनको जितना भी दुःख होता है, वह तुच्छ पदार्थों के लिए भगवान की आज्ञा का उल्लंघन किए जाने के कारण ही होता है और उसे जितना सुख होता है, वह भगवान की आज्ञा का पालन करने के कारण ही होता है। (गढडा प्रथम-34)

3. गृहस्थ हरिभक्तों को गृहस्थ धर्म के अनुसार बरतना और हरिभक्त स्त्रियों को नारियों के धर्मानुसार आचरण करना चाहिए। यदि निर्धारित मर्यादाओं से न्यून आचरण किया तो भी सुख नहीं होता, और उन मर्यादाओं से अधिक आचरण किया गया, तो भी सुख नहीं मिलता। क्योंकि परमेश्वर द्वारा प्रतिपादित धर्मानुसार ही ग्रन्थ में लिखा गया होता है, तथा मर्यादापूर्ण

आचरण ऐसा होता है कि पालन करनेवालों को किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती एवं उस धर्म का आसानी से पालन भी किया जा सकता है। अतः कोई इसमें न्यूनाधिक आचरण करने का प्रयास करेगा, तो वह अवश्य दुःखी होगा। (गढडा मध्य-51)

4. पंचव्रतों के पालन की जो धर्ममर्यादा है, उस मर्यादा को जान-बूझकर कभी तोड़ना नहीं। यदि कदाचित् अनजाने में धर्ममर्यादा का उल्लंघन हो जाए तो तत्काल उसका प्रायश्चित्त कर लेना। (जेतलपुर-3)
5. धर्मवान् मनुष्य चोरी, परस्त्री संग और चुगली करना आदि समस्त पापों का परित्याग कर और परमेश्वर से डरकर धर्म-मर्यादा के अनुसार चलते हैं। संसार में अन्य मनुष्य या अपने कुटुम्बीजन हो, वे सब उनका विश्वास करते हैं। और, वे जो कुछ बोलते हैं, वह

सभी को सत्य ही प्रतीत होता है। ऐसे धार्मिक पुरुषों को ही सच्चे सन्त का सत्संग रुचिकर लगता है। (सारंगपुर-10)

6. जगत में एक बात होती है कि, 'मन होय चंगा तो कठौती में गंगा।' परन्तु यह बात मिथ्या है। क्योंकि चाहे कैसा भी समाधिनिष्ठ अथवा विचारवान पुरुष हो, फिर भी वह स्त्रियों का सहवास करने लगे, तो उसका धर्म किसी भी प्रकार से नहीं रह सकता। तथा चाहे कैसी ही धर्माचरणवाली स्त्री हो, उसका यदि परपुरुष के साथ सहवास हो जाए, तो उसका भी धर्म नहीं ही रहता। इस तरह स्त्री-पुरुष का परस्पर सहवास होने पर भी उनका धर्म रहे, ऐसी तो आशा ही नहीं रखनी चाहिए! यह बात सौ प्रतिशत सत्य ही है, इसमें किसी भी तरह का संशय नहीं रखना चाहिए। (गढडा मध्य-35)

7. जो तीव्र वैराग्यवान है, वही धर्म-रत रह सकता है तथा जिसने अपने जीव को सत्संग में स्नेहपूर्वक जोड़ रखा हो, तथा हमारे साथ स्नेहपूर्वक जुड़ा हो, वह भी धर्मरत रहता है, और भगवान को अन्तर्यामी जानकर अपने-अपने नियमों के अनुसार आचरण करते हैं, वही धर्मनिष्ठ रह पाते हैं। इनके सिवा, दूसरों का तो कुछ ठिकाना नहीं रहता। (गढडा अंत्य-29)

कलश-21 : सांख्यविचार

1. ये सांख्य-मतानुयायी विचार करके अपनी आत्मा से व्यतिरिक्त इन पाँच इन्द्रियों तथा चार अन्तःकरणों द्वारा भोग्य विषयभोगों को अतिशय तुच्छ जानते हैं। इसीलिए, वे किसी भी पदार्थ के असर से विस्मित नहीं होते, तथा उनके बन्धन में नहीं आते। जब कोई

उनके पास आकर यह कहे कि 'यह पदार्थ बहुत अच्छा है,' तब वे ऐसा विचार करते हैं कि यह पदार्थ चाहे कितना ही अच्छा होगा, फिर भी यह इन्द्रियों तथा अन्तःकरण द्वारा ग्राह्य है। अतः इन्द्रिय-अन्तःकरण द्वारा ग्राह्य पदार्थ असत्य और नाशवान है।' ऐसी दृढ़ समझ सांख्यमतानुयायियों में रहा करती है।

(पंचाला-2)

2. जो मायिक सुख है, उसका उपभोग दीर्घकाल तक भी किया हो, तो भी अन्त में वह क्षणभर का ही प्रतीत होता है। (वरताल-9)
3. सांख्यनिष्ठावाला भगवान का भक्त, चौदह लोकों के भीतर जो भी सुख सुलभ हैं, उन सबका मूल्यांकन करके परख लेता है। उन सुखभोगों के फलस्वरूप उनमें जो दुःख अन्तर्निहित हैं, उनका भी परिमाण करके उन

दुःखों को भी जान लेता है। वह बाद में उन दुःखमूलक सुखों से वैराग्य प्राप्त कर केवल एक परमेश्वर में ही दृढ़ प्रीति रखता है।

(गढडा मध्य-24)

4. जैसे कांख के रोएँ में कौन अच्छा और कौन बुरा कहा जाएगा? वे तो सभी एकसमान ही हैं! वैसे ही हमारे मन में सभी मायिक पदार्थ एकसमान ही प्रतीत होते हैं। (गढडा मध्य-55)

कलश-22 : आत्मज्ञान

1. जिसको परमपद प्राप्त करने की इच्छा हो, उसे अपने भीतर कुछ पौरुष एवं शौर्य रखना चाहिए, परन्तु बिलकुल कायर होकर नहीं बैठना चाहिए। यह विचार भी करते रहना चाहिए कि जिस प्रकार इस देह में चार अन्तःकरण, दस इन्द्रियाँ तथा पाँच प्राण हैं,

उसी तरह मैं जीवात्मा हूँ, फिर भी इस देह में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हूँ और सब (इन्द्रियों-अन्तःकरण) का नियन्ता हूँ।' उसे ऐसा कभी नहीं मानना चाहिए कि 'मैं तुच्छ हूँ तथा अन्तःकरण एवं इन्द्रियाँ बलवान हैं।'

जिस प्रकार से किसी बुद्धिहीन राजा की आज्ञा का पालन उसके परिवार के लोग भी न करते हों, तो इस बात की खबर गाँव के लोगों में भी पहुँच जाती है। फिर तो गाँव के लोग भी उसकी आज्ञा नहीं मानते और देशभर के मनुष्य भी इस बात को सुनते ही उस राजा की आज्ञा को नहीं मानते। बाद में वह राजा ग्लानिवश असमर्थ हो जाता है और किसी पर भी अपना आदेश नहीं चलाता। वैसे ही राजा के स्थान पर जीवात्मा है, तथा उसके कुटुम्ब के स्थान पर अन्तःकरण है। गाँव

और देश के लोगों के स्थान पर इन्द्रियाँ हैं, और जब यह जीवात्मा पौरुषहीन होकर बैठ जाती है, तो अन्तःकरण पर आदेश चलाकर उसे परमेश्वर के सम्मुख करना भले ही चाहे, परन्तु अन्तःकरण उसका कहना नहीं मानेगा। और, इन्द्रियों को वश में रखना भी चाहे, परन्तु इन्द्रियाँ भी उसके वश में नहीं रहेंगी। फिर तो यह जीव भले ही कायानगर का राजा है, परन्तु वह रंक की तरह दीन-हीन होकर रहता है। जब राजा पौरुषहीन हो जाता है, तब उसके नगर के लोग साँड की तरह उस पर जमकर बैठ जाते हैं और राजा के प्रत्येक आदेश की अवहेलना करने लगते हैं। उसी प्रकार से जीव के कायानगर में जो कामादिक दोष राजा नहीं हैं, वे भी राजा होकर बैठ जाते हैं और उस जीव की सत्ता लेशमात्र भी चलने नहीं देते।

अतः जिसे कल्याण की चाहना हो, उसे इस प्रकार कायरता नहीं रखनी चाहिए और वही उपाय करना चाहिए जिससे उसका अपना अन्तःकरण एवं अपनी इन्द्रियाँ अपनी आज्ञा का पालन किया करें। (गढडा मध्य-12)

2. ऐसा समझता हो कि 'जो अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का प्रकाशक है तथा जिससे देह चलती-फिरती है, ऐसी सत्तारूप आत्मा मैं हूँ। ऐसा मैं धन-स्त्री आदि पदार्थों द्वारा सुखी होनेवाला नहीं हूँ, और न मैं इन पदार्थों के न मिलने से दुःखी हो सकता हूँ।' इस प्रकार की दृढ़ समझ जिसे हो, उसके समक्ष सन्त द्वारा चाहे जिस किसी भी प्रकार से पंचविषयों तथा देहाभिमान का खंडन किया जाए, तो भी उसे किसी भी तरह से उन सन्त के प्रति असद्भाव नहीं होता, और तुच्छ पदार्थों के

लिए सन्त के साथ क्लेश नहीं होता और उसके हृदय में अनबन की कोई गांठ नहीं पड़ती।' (लोया-17)

3. इस देह से पृथक् आत्मा समझना। वह आत्मा न तो ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है और न किसान ही है। वह न तो किसी का लड़का है और न किसी का पिता भी है। न उसकी कोई जाति है और न ही उसका कोई रिश्ता ही है। ऐसी आत्मा तो सूर्य एवं अग्नि के समान तेजस्वी तथा ज्ञातृत्व से युक्त है। हालाँकि अग्नि की ज्वाला तथा सूर्य की किरणें तो जड हैं, जिन्हें उँगली से छूने पर भी खिसकती नहीं हैं। किन्तु, चींटी को यदि उँगली से छू दिया जाए, तो वह खिसक कर उलटी चल पड़ती है। इसलिए आत्मा को प्रबुद्धता से युक्त बताया गया है। उसे सूर्य और अग्नि के सदृश

तेजोमय बताया गया है, क्योंकि इसका आकार ऐसा तेजस्वी है। (गढडा अंत्य-39)

4. यदि आत्मनिष्ठा की दृढ़ता न हो, तो अपनी देह में सुख-दुःख का योग होने पर उस भक्त की वृत्तियाँ विचलित हो जाती हैं। फिर वह जिसे सुखदायी जानता है, उससे प्रीति करने लगता है और जिसे दुःखदायी जानता है, उससे द्वेष करने लगता है। इस प्रकार उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। (गढडा अंत्य-1)
5. ठंड, धूप, भूख, प्यास, मान, अपमान, सुख एवं दुःखरूपी नदी को आत्मनिष्ठावाला पुरुष तैरकर पार कर लेता है। (गढडा प्रथम-61)

कलश-23 : सम्बंध की महिमा का विचार

1. यह सत्संग तो अलौकिक है। हम तो सबसे परे जो दिव्य अक्षरधाम है, उसमें जो भगवान के पार्षद हैं, उन्हीं के समान इन सत्संगियों

को न मानते हों, तो हमें भगवान तथा भगवान के भक्त की सौगन्ध है। (गढडा अंत्य-21)

2. जो भगवान की महिमा को जानता हो, वह तो भगवान के सम्बंध को प्राप्त हुए पशु-पक्षियों तथा वृक्षलता आदि तक को भी जब देवतुल्य माने, तब जो मनुष्य हो और भगवान की भक्ति करता हो तथा व्रत-नियम का पालन करता हो, एवं भगवान का वह नामस्मरण करता हो, उसको तो देवसदृश ही मानेगा, तथा उसमें कोई दोष नहीं देखेगा, इसके लिए कहना ही क्या ? अतः जो पुरुष भगवान की महिमा को समझता है, उसका भगवान के भक्त के साथ कभी वैर नहीं होता, परन्तु जो भगवान के माहात्म्य को नहीं जानता, उसका भगवद्भक्त के साथ वैर जरूर हो जाता है। (कारियाणी-9)

कलश-24 : पक्ष

1. भगवान के भक्त को बचाने के लिए बीच में आकर मर भी जाता है, या घायल भी हो जाता है तो उसके सम्बंध में शास्त्रों में कहा गया है कि इस प्रकार प्राणाहुति देने तथा आहत होने से उसके ब्रह्महत्यादि पंचमहापाप मिट जाते हैं। भगवान के भक्त का पक्ष रखने का ऐसा प्रताप है। (गढडा मध्य-60)
2. अपने इष्टदेव का भजन करनेवाले सत्संगी वैष्णवजनों का जो पक्ष ग्रहण करें; जैसे माता-पिता अपने पुत्र-पुत्री का पक्ष रखते हैं, तथा जैसे पुत्र अपने पिता का पक्ष रखता है, और स्त्री जैसे अपने पति का पक्ष रखती है, वैसे ही भगवान के भक्त का पक्ष रखना चाहिए। (गढडा मध्य-61)

कलश-25 : अवगुण त्याग - गुणग्रहण

1. जिससे ईर्ष्या हो, उसके गुणों का ग्रहण करें और अपने अवगुणों का परित्याग कर दें। यदि ऐसा न हो सके तो भगवान के भक्तों को उसके प्रति द्रोह उत्पन्न करनेवाली ईर्ष्या का सर्वथा परित्याग कर दें। (गढडा प्रथम-4)
2. कभी किसी हरिभक्त का दोष दिखाई दे, तब यही समझना कि 'यद्यपि इसका स्वभाव सत्संग में शोभास्पद नहीं है, तथापि उसे सत्संग प्राप्त हुआ है, तो वह चाहे साधारण ही क्यों न हो, परन्तु वह सत्संग में पड़ा रहा है, तो उसके पूर्वजन्म का अथवा इस जन्म का संस्कार बहुत बड़ा है, अतः उसे ऐसा सत्संग मिला है।' ऐसा समझकर उसका भी अतिशय गुण ग्रहण करना चाहिए। (गढडा प्रथम-24)

3. किसी गरीब हरिभक्त से द्वेष करे, तो उसका बुरा ही होता है। यह उसी कारण होता है कि भगवान समस्त जीवों में अन्तर्यामीरूप से रहते हैं, वे जहाँ अपनी इच्छा हो, वहाँ अपना उतना ही सामर्थ्य दिखलाते हैं। अतः किसी भक्त के अपमान से भगवान का भी अपमान हो जाता है, तब उस अपमानकर्ता का अत्यन्त अहित हो जाता है। ऐसा विचार करके भगवान के भक्त को अत्यन्त नम्र होकर किसी का भी अपमान नहीं करना। (गढडा प्रथम-62)
4. जो अहंकारी होता है, उसे संत के प्रति असद्भाव हो जाता है। ऐसे अहंकारी का तो ऐसा स्वभाव होता है कि 'जो आदमी उसकी प्रशंसा करता है, उसके एक सौ दोषों की भी उपेक्षा करके वह उसके एक गुण को भी अत्यधिक महत्त्व प्रदान करता है। परन्तु, जो पुरुष उसकी प्रशंसा नहीं करता, उसमें यदि

एक सौ गुण भी क्यों न हों, फिर भी वह उसको महत्त्व नहीं देता और उसके साधारण दोष को भी बड़ा दोष मान लेता है। इस प्रकार, पहले तो वह मन एवं वचन द्वारा द्रोह करता है, तत्पश्चात् देह द्वारा भी द्रोह करता है। (लोया-16)

5. हमारे सामने यदि कोई भगवान के भक्त की निंदा का वचन कहे, तो हमें उसे देखना तक अच्छा नहीं लगता। तथा कोई व्यक्ति भगवद्भक्तों का अवगुण ग्रहण करता हो, तो हमें उसके हाथ से प्राप्त अन्न-जल भी अच्छा नहीं लगता। (गढडा अंत्य-21)

कलश-26 : दासभाव

1. ऐसा दृढ़ हरिभक्त होने का केवल यही उपाय है कि परमेश्वर के दास का गुलाम होकर रहे, और यह समझे कि 'ये समस्त भक्त बड़े हैं

और मैं सबसे न्यून हूँ।' ऐसा जानकर वह हरिभक्त का दासानुदास होकर रहे। और, जो पुरुष इस प्रकार रहता है, उसके समस्त विकारों का विनाश हो जाता है और दिन-प्रतिदिन उसके ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि शुभ गुण बढ़ते रहते हैं। (गढडा प्रथम-58)

2. घर में केवल एकाध मन अन्न मिलता हो, और उस समय सन्त के प्रति जैसी प्रीति तथा दीनता हो, वैसी ही दीनता और अधीनता, जब उसे एक गाँव का राज्य मिले या पाँच गाँव का राज्य मिले अथवा पचास गाँव का राज्य मिले या सौ गाँव का राज्य मिले अथवा समस्त पृथ्वी का भी राज्य मिल जाए; फिर भी पूर्वकाल में जैसे सन्त के समक्ष अतिशय प्रीतिपूर्वक दीन-अधीन था, वैसा ही दीन-अधीन बना रहे; जैसे ही इन्द्रलोक एवं ब्रह्मलोक का राज्य प्राप्त होने पर भी सन्त के

प्रति अपनी दीनता एवं अधीनता की भावना बनाए रखे। ऐसे गृहस्थ पर भगवान की अतिशय प्रसन्नता होती है। और, त्यागी भक्त भी यदि पहले गरीब अवस्था में सभी सन्तों की सेवा-चाकरी करता हो, वैसी ही सेवा-चाकरी स्वयं को भगवान सदृश ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी करता रहे, किन्तु साधुओं के साथ पैतृक दावा पेश न करे और किसी के साथ प्रतिस्पर्धी का भाव न रखे। ऐसे लक्षणवाले साधु पर भगवान अतिशय प्रसन्न हो जाते हैं।

(गढडा मध्य-25)

3. भगवान के संत की महिमा हो, तब उसे उन संत के समक्ष अहंकार कैसे रहेगा ? तथा उनको वह नमन क्यों नहीं करेगा ? उनके सामने तो वह दासानुदास होकर रहेगा और यदि वह संत पाँच-पाँच जूते भी मारें तो उसे सहन करता हुआ यही समझे कि 'मेरा यह अहोभाग्य है

कि मैं ऐसे सन्त का तिरस्कार सहन करता हूँ, अन्यथा दुर्भाग्यवश मुझे स्त्री और पुत्रों के तिरस्कार सहन करने पड़ते, और माता-पिता या राजा के तिरस्कार सहन करने पड़ते। ओर, कोई पुरुष यदि सन्त की सभा में जाता है और वहाँ उसका सत्कार नहीं होता, उस समय वह उस सन्त के अवगुण की आलोचना करने लगता है। क्योंकि उन सन्त की महानता उसकी समझ में आई ही नहीं है! अन्यथा वह उन पर दोष नहीं मढ़ता। जैसे बम्बई के गवर्नर साहब कुर्सी पर बैठे हों और उनकी सभा में किसी गरीब आदमी के जाने पर यदि वे उसे कुर्सी पर नहीं बिठाते और उसका कुछ भी आदर नहीं करते, तो क्या उसे उस अंग्रेज के इस व्यवहार पर क्रोध होगा? तथा मन में उसको गाली देने की इच्छा होगी? लेशमात्र भी नहीं, क्योंकि उसने उस अंग्रेज के पद-गौरव को समझ लिया है कि

‘यह तो मुल्क का हाकिम है और मैं तो कंगाल हूँ।’ ऐसा समझकर उसे दुःख नहीं होगा। उसी प्रकार उसने यदि सन्त की महत्ता को जान लिया हो, तो वे सन्त चाहे कितना ही तिरस्कार करें, फिर भी उसे दुःख नहीं होगा। वह सदैव अपने ही अवगुणों को देखेगा, परन्तु सन्त का अवगुण तो किसी भी प्रकार से देखेगा ही नहीं! अतः जिसको भगवान और सन्त का माहात्म्य समझ में आ गया है, उसकी स्थिति सत्संग में अचल बनी रहती है और, जिसको इनका माहात्म्य ज्ञात नहीं हुआ है, उसकी स्थिति का कोई भरोसा नहीं! (लोया-17)

4. उसे मन, वचन और देह से भगवान के भक्त का द्रोह नहीं करना चाहिए। यदि भगवान के भक्त का कुछ द्रोह हो गया, तो वाणी द्वारा उसकी प्रार्थना करना तथा भूमिसात् होकर पूरे मन से उसे दंडवत् प्रणाम करना तथा पुनः

उसका द्रोह न हो जाए, इस बात का सदैव ध्यान रखना। परन्तु द्रोह करके फिर दंडवत् प्रणाम करे और फिर द्रोह करने लगे तथा दंडवत् प्रणाम भी करता रहे, ऐसा कभी मत बरतना! (गढडा मध्य-40)

कलश-27 : ईर्ष्या

1. जिस पर जिसको ईर्ष्या होती है, उसका उत्कर्ष उससे सहन नहीं होता, किन्तु उसका अहित होने पर उसे प्रसन्नता होती है, यही ईर्ष्या का लक्षण है। (गढडा प्रथम-71)
2. अपने से जो श्रेष्ठ हों, फिर भी जब उनका भी सम्मान होता है, तब उसे न देख सके, ऐसा जिसका स्वभाव हो, उसके बारे में यूँ समझना कि इसके हृदय में ईर्ष्या है। और यथार्थ ईर्ष्या करनेवाला तो किसी की भी महत्ता को नहीं देख सकता। (सारंगपुर-8)

3. जो श्रद्धा सहित एवं ईर्ष्या रहित होकर भक्ति करता है, वह हमें अतिशय प्रिय लगता है।' यदि कोई भक्त श्रद्धापूर्वक भक्ति करता हो और इस बीच अगर कोई अन्य भक्त भक्ति करने आये, उस पर यदि वह ईर्ष्या करे, तो वह हमें प्रिय नहीं लगता। (गढडा मध्य-52)

कलश-28 : मान

1. जिसके हृदय में मान होता है, उस मान में से ईर्ष्या उत्पन्न होती है। और, क्रोध, मत्सर तथा असूया की भी उत्पत्ति मान से होती है। (सारंगपुर-8)

कलश-29 : क्रोध

1. जैसे यह सभा हो रही है, इसमें यदि अभी कोई साँप निकल आये, और भले ही वह किसी को नहीं काटे, तो भी सभी लोगों को उठकर भागना पड़ता है और सबके हृदय भय से आंतकित हो

जाते हैं, तथा जैसे कोई बाघ गाँव के फाटक पर आकर गर्जना कर रहा हो, भले ही वह किसी को न मारे, फिर भी सबके अंतःकरण भय से कांपने लगते हैं, और कोई अपने घर से बाहर नहीं निकल सकता। वैसे ही अगर थोड़ा-सा भी क्रोध उत्पन्न हो जाए, तो वह भी उत्पन्न दुःखदायी होता है। (लोया-1)

2. वह क्रोध तो जप, तप, ज्ञान आदि समस्त शुभ गुणों का नाश कर डाले ऐसा ही होता है। (अहमदाबाद-8)

3. जिसको गरीब पर क्रोधादि का संकल्प हो जाता हो, उसे बड़े (सन्त-भक्त) पर भी हो सकता है। इतना ही नहीं, उसे अपने इष्टदेव पर भी क्रोधादि का मलिन संकल्प हो जाता है। इसलिए जिसे कल्याण की इच्छा हो, वह किसी के प्रति मलिन संकल्प न करें। (गढडा मध्य-27)

कलश-30 : आलस्य

1. जिसमें घोर आलस्य हो तथा निद्रा भी बहुत हो और जब कोई उससे स्नान-ध्यानादि नियमों का पालन करने की बात करे, तो वह कहने लगता हो कि 'अभी कर लूँगा, शीघ्रता क्या है, धीरे-धीरे होगा!' ऐसा बोलनेवाला सन्त भले ही बहुत सज्जन क्यों न हो, फिर भी उसका संग नहीं करना चाहिए। (लोया-6)
2. हरिभक्त में जो कसर रहती है, वह तो उसके आलस्य के कारण ही रहा करती है। (गढडा प्रथम-20)

कलश-31 : कामवासना

1. यदि स्त्री-सम्बन्धी कामना हो, तो यह विचार करें कि परस्त्री के प्रति यदि कुदृष्टि रखेंगे, तो चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा,

और वहाँ घोर-यातनाएँ सहन करनी पड़ेंगी। विषयभोगों में तो कुत्ते व गधे भी लिप्त रहते हैं, और मुझे तो प्रकट पुरुषोत्तम मिले हैं, यदि वे अप्रसन्न होंगे, तो बड़ी हानि होगी। ऐसा विवेक रखकर कामवासना का परित्याग कर दें और भगवान् सम्बन्धी सुख को ही ग्रहण करें।

(अहमदाबाद-5)

2. सभा हो रही हो, तब यदि किसी स्त्री अथवा पुरुष को आपस में देखने में कुछ फ़र्क हो जाए और वह उसको छिपाने के लिए चाहे जितनी युक्ति करे, परन्तु हमें जानकारी हुए बिना नहीं रहती। तब उस मनुष्य पर हमारी अत्यंत अप्रसन्नता हो जाती है। हमारे मुख पर भी कालिमा छा जाती है और उसका घोर दुःख होता है। (गढडा मध्य-33)
3. युवावस्था में आहार बढ़ जाता है, जिससे कामुकता में भी वृद्धि हो जाती है। यदि वह

युवावस्था में आहार को कम कर दे और देह द्वारा सर्दी, गर्मी, वर्षा और भूख आदि को जान-बूझकर सहन करता रहे तथा ऐसा ही (संयम का) विचार रखते हुए महान संत का सत्संग करता रहे तो युवावस्था में भी उसकी काम-भावना मन्द हो जाती है। (लोया-8)

कलश-32 : स्वभाव टालने के उपाय

1. जिस तरह बनिया जितना व्यापार करता है, उसका हिसाब लिख लेता है, वैसे ही जिसने सत्संग के प्रारम्भ दिन से ही अपना लेखा लिख रखा हो, उसके बुरे स्वभाव मिट जाते हैं। और, वह तो ऐसा सोचता रहता है कि 'मैंने जब सत्संग नहीं किया था, तब मेरा इतना मलिन स्वभाव था, किन्तु सत्संग करने के बाद इतना उत्तम स्वभाव हो चुका है।' इस तरह प्रतिवर्ष अपनी प्रगति होती हो या उसमें

कुछ अंतर रहता हो, उस सभी की जाँच किया करे, परन्तु मूर्ख बनिया जिस तरह अपना हिसाब नहीं लिखता है, उसके समान आचरण न करे। इस प्रकार सत्संग करके जो अपनी प्रगति की जाँच-पड़ताल करता रहता है, उसके जो-जो दुष्ट स्वभाव होते हैं, वह सभी नष्ट हो जाते हैं। (सारंगपुर-18)

2. स्वभाव से छुटकारा दिलाने के लिए सत्पुरुष जो उपदेश देते हों, उनके वचन में अतिशय विश्वास हो, उपदेशकर्ता पर श्रोताजनों की अत्यंत प्रीति हो, तथा उपदेश करनेवाले (सत्पुरुष) चाहे जितना दुःख पहुँचाकर कितने ही कटु वचन कहे, तो भी उनको हितकारी ही मानता रहता हो तो मुमुक्षु की स्वाभाविक प्रकृति का भी नाश हो जाता है। परन्तु, इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। (गढडा मध्य-37)

3. जिस स्वभाव के कारण अपनी फ़जीहत हुई हो, उस स्वभाव के साथ दृढ़तापूर्वक वैर बांधकर, जब तक उसका मूलोच्छेद हो, तब तक उपाय करना चाहिए। ऐसा करने पर भगवान और उनके सन्त पूर्ण दया करते हैं। और जब हरि की तथा उनके भक्त की जिस पर दया होती है, उसके हृदय में अतिशय सुख बना रहता है और कल्याण के मार्ग पर चलने का सामर्थ्य भी बढ़ जाता है, और अपने काम, क्रोध, लोभादिक शत्रुओं की शक्ति क्षीण हो जाती है। (गढडा प्रथम-78)
4. जैसे कोई शत्रु हमारा बनता हुआ काम बिगाड़ दे अथवा हमारी माता और बहन को गालियाँ दे, तब उस पर हमें अत्यधिक क्रोध आता है। प्रतिकार स्वरूप हम जिस उपाय द्वारा उसका अनिष्ट हो, वैसा ही उपाय करने लगते हैं

अथवा कोई अन्य व्यक्ति उस शत्रु का कुछ भी बुरा करे, तो हमें अत्यन्त ही प्रसन्नता होती है। वैसे ही जो मोक्ष के लिए यत्न कर रहा हो, ऐसे समय में यदि काम-क्रोधादि आन्तरिक शत्रु विघ्न डालें, तो उन दोषों के प्रति भी उसे वैसी ही वैर-बुद्धि हो जाए तथा उनको मिटा देने की खटक मन से कभी मिटे ही नहीं, ऐसा विचार जिसको प्राप्त हो जाए, उसी विचार द्वारा स्वभावरूपी शत्रु को वह मिटा सकता है। (गढडा मध्य-15)

कलश-33 : निष्काम

1. धर्म सम्बंधी साधनों में यदि एक निष्काम वर्तमान (ब्रह्मचर्य) बना रहे, तो समस्त साधन स्वतः सुलभ हो जाते हैं। (लोया-6)
2. किसी को यदि मात्र निष्काम व्रत में दृढ़ता हो, तो उसे इस लोक तथा परलोक में कभी-कहीं

पर भी भगवान से पृथकता नहीं रहेगी तथा उस पर हमारे स्नेह में भी कभी कमी नहीं होगी। और, यहाँ के हरिभक्तों में निष्काम व्रत के प्रति अतिशय दृढ़ता बनी हुई देखकर ही हम यहाँ टिके हुए हैं। जिसे निष्काम व्रत के प्रति अतिशय दृढ़ता बनी हुई है, वह चाहे हजार कोस दूर क्यों न हो, हम उसके पास ही हैं। और, हम जो-जो वार्ता करते हैं, उसमें भी निष्काम व्रत की बात का ही अतिशय प्रतिपादन होता है। अतः जो निष्काम व्रत का पालन करता है, वही हमें प्रिय है और इस लोक तथा परलोक में उसका और हमारा सुदृढ़ मिलाप रहता है। (गढडा मध्य-33)

3. जिसकी ऐसी समझ है कि, यह रूपवती स्त्री कल्याण के मार्ग में बाधक है, तथा इह लोक और परलोक में यह परम दुःखदायिनी है। और, स्त्री की प्राप्ति तो मुझे पशु आदि के

रूप में जन्म लेने पर अनेक बार हो चुकी है, तथा अब भी यदि मैं परमेश्वर का भजन नहीं करूँगा, तो भी मुझे कई जन्म में अनेक स्त्रियों की प्राप्ति होती रहेगी! अतः वह दुर्लभ नहीं है। और भगवान तथा उनके सन्त का संग महादुर्लभ है। ऐसी दुर्लभ प्राप्ति में स्त्री ही परम विघ्नरूप है।' ऐसा जानकर हृदय में उसके प्रति दोषभाव की दृढ़ता हुई हो, तब उसे चाहे कैसी ही रूपवती स्त्री दिखाई दे परन्तु उसे काम-विकार नहीं उत्पन्न होगा। (लोया-10)

कलश-34 : प्रसन्नता

1. जिस पर अतिशय महान सत्पुरुष की प्रसन्नता हो जाए, उसके चाहे जितने भी मलिन संस्कार हों, वे भी नष्ट हो जाते हैं और उनके प्रसन्न होने से रंक भी राजा हो जाता है। इसके साथ ही चाहे जितने अनिष्टकारी प्रारब्ध कर्म हों, वे

सब शुभ हो जाते हैं और उसके सिर पर चाहे जितना बड़ा विघ्न उपस्थित होनेवाला हो, वह नष्ट हो जाता है। (गढडा प्रथम-58)

2. भगवान की भक्ति, उपासना, सेवा, श्रद्धा तथा धर्मनिष्ठा आदि जो भी कुछ साधना करें, उनमें अन्य फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।' ऐसी बात सत्शास्त्रों में कही गई है, सो तो ठीक है, परन्तु ऐसी साधना करनेवालों को एक इच्छा तो अवश्य रखनी चाहिए कि इसके द्वारा मुझ पर भगवान की प्रसन्नता हो जाए। (गढडा अंत्य-25)
3. देवलोक एवं मृत्युलोक में जो भी सुखी जीव हैं, उन सभी ने निश्चय ही भगवान तथा भगवान के सन्त को प्रसन्न किया होगा, तभी वे उस प्रताप से सुखी बने हुए हैं। (गढडा मध्य-45)

4. भगवान तथा भगवान के भक्त प्रसन्न हों, तो वह इसी देह से परमपद को प्राप्त होने जैसा आनन्द भोगता है। और, यदि उसने भगवान तथा भगवान के सन्त को अप्रसन्न किया, तो वह चाहे स्वर्ग में जाने योग्य कर्म क्यों न किया हो, किन्तु उसका नाश हो जाता है और उसे नरक में गिरना पड़ता है। इसलिए, ज्ञानी पुरुष वैसा ही आचरण करें, जिससे भगवान और भगवान के भक्त प्रसन्न हो जाएँ। और, अपने सम्बंधी जनों को भी यही उपदेश देना कि 'हमें वही आचरण करना है कि जिससे भगवान तथा भगवान के भक्त हम पर प्रसन्न हों और हम पर उनकी कृपा बनी रहे।

(गढडा मध्य-45)

5. पंचव्रतों का पूर्णरूप से पालन किया जाए और उसमें किसी भी तरह की कमी न आने

दी जाए, तो भगवान तथा उनके सन्त प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

(गढडा प्रथम-78)

6. एकादशी व्रत करना हो, तब ग्यारह इन्द्रियों को अपना आहार करने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। यह व्रत पन्द्रह दिनों में एक बार आता है, तो इसे सावधान होकर करना चाहिए। तभी भगवान व्रत करनेवाले पर प्रसन्न होते हैं, किन्तु बिना संयम के जो 'ढोरलंघन' करता है, उन पर भगवान की प्रसन्नता नहीं होती। (गढडा मध्य-8)

कलश-35 : कथावार्ता

1. मुमुक्षु को उत्कृष्ट गुणों की प्राप्ति किस प्रकार होती है? तो भगवान की कथा-वार्ता सुनने में जिसको जितनी प्रीति हो, उसको जगत से उतनी ही अनासक्ति हो जाती है, तथा काम,

क्रोध, लोभादि दोषों का नाश हो जाता है। परन्तु जिसे कथा-वार्ता में आलस्य रहता हो, उसके सम्बंध में तो ऐसा अनुमान लगाना कि 'उसमें महान गुण कभी नहीं आएँगे।

(गढडा अंत्य-24)

2. जैसे किसी पुरुष के दाँत पहले तो इतने मज़बूत होते हैं कि वह कच्चे चने चबा जाता है, परन्तु वह यदि कच्चा आम अच्छी तरह खा ले, तो भात भी चबाकर नहीं खा सकेगा। ठीक वैसे कामादि में आसक्त कैसा ही पुरुष क्यों न हो, वह यदि आस्तिक होकर इस वार्ता को श्रद्धापूर्वक सुनता है, तो ऐसा पुरुष विषयों के सुख को भोगने में समर्थ नहीं होता।

(कारियाणी-12)

3. विश्वासपूर्वक, प्रीति सहित जो भगवान् पुरुषोत्तम नारायण की वार्ता को सुनना, इससे

बढ़कर मन को स्थिर रखने का तथा निर्विषयी बनाने का अन्य कोई बड़ा साधन नहीं है!

(कारियाणी-12)

4. शास्त्रों में नव प्रकार की जो भक्ति बताई गई है, उसमें श्रवणभक्ति को प्रथम स्थान दिया गया है। इसलिए, जो श्रवणभक्ति की दृढ़ता रखेगा, उसे प्रेमलक्षणा भक्ति पर्यन्त भक्ति के समस्त अंग सिद्ध हो जाएँगे। (गढडा अंत्य-24)
5. सत्-शास्त्रों का श्रवण सत्पुरुष से ही करना चाहिए, किन्तु असत्पुरुष द्वारा कभी भी सत्-शास्त्र नहीं सुनना चाहिए। (लोया-11)
6. भगवत्स्वरूप सम्बंधी ऐसी वार्ता तो शास्त्रों से भी अपने-आप समझ में नहीं आती। और, सद्ग्रन्थों में ऐसी वार्ता तो होती है, परन्तु जब सत्पुरुष प्रकट होते हैं तभी उनके मुख द्वारा यह बात समझ में आती है। लेकिन अपनी बुद्धि

के आधार पर तो सद्ग्रन्थों में से भी यह बात समझ में नहीं आती। (गढडा मध्य-13)

कलश-36 : अंतर्दृष्टि

1. जीवमात्र का ऐसा ही स्वभाव है कि वह यदि कुछ अपराध के दायरे में आ गया, तो वह बोल पड़ता है कि 'मुझे किसी अन्य मनुष्य ने भुलावे में डाल दिया, इसी कारण मुझसे यह भूल हो गई, अन्यथा मुझमें कोई दोष नहीं है।' परन्तु ऐसा कहनेवाला महामूर्ख है, क्योंकि कोई कहेगा कि 'तू कुएँ में गिर पड़', तो क्या उसके कहने से उसे कुएँ में गिर जाना चाहिए? इसलिए, दोष तो उस मनुष्य का ही है, जो उल्टा काम करता है, और दोष किसी और के सिर मढ़ता है! इसी प्रकार, इन्द्रियों और अन्तःकरण को दोषित ठहराना वह भी जीव की मूर्खता ही है। और, मन तो जीव का मित्र ही है, इसलिए वह

जीव के लिए अप्रिय लगनेवाला संकल्प कभी नहीं करता। अतः मन में यदि अनुचित संकल्प हो जाए, तब जीव यदि उस पर अत्यंत कुपित हुआ, तो वह मन को ऐसे संकल्प करने ही नहीं देता! परन्तु यदि मन में सदैव अनुचित संकल्प होते रहते हों, तब समझना कि इसमें अपने जीव का दोष है; किन्तु अकेले मन की ही त्रुटि नहीं है। (गढडा अंत्य-6)

2. इसमें यह समझ है कि ऐसे भक्त को अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिए बड़ों के वचनों की साक्षी लेनी चाहिए। जैसे किसी व्यावहारिक कार्य को पूर्णरूप से सिद्ध करने के लिए भद्र पुरुषों की साक्षी लेनी पड़ती है, वैसे ही यहाँ भी उस भक्त को साक्षी लेनी चाहिए और, अपनी जो भी कुछ न्यूनता है, वह स्वयं को समझ में न आती हो, तो उसके लिए भगवान के समक्ष प्रार्थना करनी चाहिए

कि 'हे महाराज! मुझमें जो भी कुछ अपूर्णता हो, वह कृपा करके आप मिटा दीजिएगा।

(गढडा मध्य-66)

3. शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नामक पाँच विषयों में जितनी अपनी तृष्णा है, उस पर विचार करना चाहिए कि मुझे भगवान में जितनी वासना है, उतनी ही क्या जगत में भी है अथवा उससे न्यून या अधिक है? उसकी परीक्षा करनी चाहिए। जैसे कि भगवान की बातें सुनने में श्रोत्रेन्द्रिय जितनी लुब्ध होती है, उतनी ही यदि जगत की बातें सुनने में आकृष्ट होती हो, तो यह समझना चाहिए कि भगवान तथा जगत में समान वासना है। इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस और गंध इत्यादि विषयों से होनेवाली अपनी स्थिति का पता लगाना चाहिए। इस प्रकार जब पता लगाते-लगाते जगत की वासना को कम करता रहता है,

तथा भगवान् सम्बन्धी वासना को बढ़ाता जाता है, तब परिणामस्वरूप पंचविषयों में उसकी समबुद्धि हो जाती है। (गडडा प्रथम-60)

कलश-37 : निष्कपट

1. पंचव्रत सम्बन्धी जो शिथिलता हो, वह यदि अपने विचार द्वारा भी न मिटती हो, तो उसे ऐसे संत के पास जाकर बता देना चाहिए कि जिनके जीवन में कोई आचार-सम्बन्धी शिथिलता न हो। तथा अपने मन में किसी सन्त के प्रति कोई दोषभाव उत्पन्न हो गया हो, तो उसे भी बता देना चाहिए; तथा भगवान् सम्बन्धी निश्चय में भी यदि कोई अनिश्चय का संकल्प हो गया हो, तो उसे भी प्रकट कर देना चाहिए; तभी उसे निष्कपट कहा जाएगा। यदि इनमें से कोई संकल्प हुआ हो और उसे सन्त के आगे नहीं कहा तो उसे कपटी समझना चाहिए। (लोया-5)

कलश-38 : पुरुषार्थ

1. जो पुरुष इस प्रकार पुरुषार्थ-पूर्वक आचरण रखता है तथा कायरता का अच्छी तरह त्याग कर देता है, वही कल्याण पथ पर अग्रगामी हुआ है, और उसके लिए स्वभावों पर जीत पाने का भी सबसे बड़ा यही उपाय है। और यदि पुरुष-प्रयत्नरूपी इस उपाय को सावधान होकर करे तो जितने कल्याण के लिए साधन हैं, सभी पुरुषप्रयत्नरूपी साधन में समाविष्ट हो जाते हैं। इसलिए, पुरुषप्रयत्न ही कल्याण के लिए सबसे बड़ा साधन माना गया है।
(गढडा मध्य-12)
2. पवित्र साधु के संग से एवं स्वयं अपने विचार के द्वारा जो पवित्र होते हैं, उसे पुरुषार्थ कहना चाहिए। (गढडा प्रथम-29)

कलश-39 : प्रार्थना

1. भगवान के भक्त को प्रतिदिन भगवान की पूजा तथा स्तुति करके उनसे यह माँगना चाहिए कि 'हे महाराज! हे स्वामिन्! हे कृपासिन्धो! हे शरणागत-प्रतिपालक! कुसंगी से मेरी रक्षा करना।' तथा, यह प्रार्थना भी करनी चाहिए कि 'हे महाराज! काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या और देहाभिमान आदि अन्तःशत्रुओं से रक्षा कीजिए तथा नित्य अपने भक्तों के सत्संग का अवसर प्रदान कीजिए।' इस प्रकार, नित्य ही भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। (गढडा प्रथम-48)

कलश-40 : सत्संग

1. जो सत्संग करते हैं, उनका सूली जैसा दुःख भी कांटे से मिट जाया करता है, क्योंकि

हमने रामानंदस्वामी से प्रार्थना की है कि, आपके सत्संगियों को यदि एक बिच्छू का कष्ट होनेवाला हो, तो मेरे एक-एक रोम में करोड़ों बिच्छुओं के डंक लगने की पीड़ा हो जाए, किन्तु उन्हें (सत्संगियों को) ऐसा कष्ट प्राप्त न हो; तथा आपके सत्संगियों के प्रारब्ध में यदि भिक्षापात्र का योग हो, तो वह मुझे मिल जाए, परन्तु आपके सत्संगी अन्न-वस्त्र के अभाव से दुःखी न हों। कृपया ये दो वरदान मुझे दीजिए।' इस प्रकार मैंने रामानन्द स्वामी से दो वरदान माँगे, जो उन्होंने मुझे प्रसन्नतापूर्वक दिए हैं। (गढडा प्रथम-70)

2. कोई अति शुद्ध भावना से सत्संग करता है, तो किसी भी प्रकार का दोष उसके हृदय में नहीं रहता और वह अपने जीवनकाल में ही ब्रह्मरूप हो जाता है। (सारंगपुर-9)

कलश-41 : युवकों को विशिष्ट उपदेश

1. युवा-अवस्थावाले को आहार कम करना, और युक्ताहारविहारपूर्वक रहना चाहिए। आहार के कम होने से ही देह का बल क्षीण होता है और तभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है, उसके बिना इन्द्रियों को नहीं जीता जा सकता। अतः इन्द्रियों को जीतकर ही अपने मन को भगवान की नवधा भक्ति में रुचिपूर्वक लगा रखें और भक्ति में प्रीति रखें, इन दो साधनों से सत्संग पार लग जाता है। (गढडा अंत्य-32)
2. फिर गोपालानन्द स्वामी ने पूछा कि 'जिसकी बाल्यावस्था अथवा युवावस्था हो उसे कैसे पुरुष का संग करना चाहिए?' श्रीजीमहाराज बोले कि 'जो वयोवृद्ध भी हो तथा जिसमें धर्म, ज्ञान और वैराग्य दृढ़ हो तथा भगवान से प्रीति भी अटल हो, ऐसे पुरुष का संग उन दोनों को स्नेहपूर्वक करना चाहिए। (गढडा अंत्य-14)

3. जब युवावस्था आती है, तब कामादि शत्रु बढ़ जाते हैं तथा देहाभिमान भी बढ़ जाता है। बाद में यदि वह कामादि शत्रुओं तथा देहाभिमान से रहित सन्त का संग करता है, तो वह युवावस्थारूपी समुद्र को पार कर लेता है। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो कामादि शत्रुओं द्वारा पराजित होने पर भ्रष्ट हो जाता है।
(सारंगपुर-18)

**कलश-42 : भगवान स्वामिनारायण का
व्यक्तित्व**

1. आप सभी हमारे आश्रित हुए हैं, अतः हमें भी आपके हित की बात कहनी चाहिए। वास्तव में मित्र भी वही है, जो 'दुःख पहुँचाकर भी उसके हित की बात कहे।' मित्र का यही लक्षण है, उसे समझ लेना चाहिए। (गढडा अंत्य-21)

2. अपने बचपन के त्यागी स्वभाव की बहुत-सी बातें कहीं। फिर बोले कि, 'जो अच्छा यानी उत्कृष्ट सद्गुणी होता है, उसे बचपन से ही लड़कों की सोहबत अच्छी नहीं लगती। वह चटोरा भी नहीं होता और देह का दमन किया करता है। देखिए न, मुझे अपनी बाल्यावस्था में ही स्वामी कार्तिकेय की तरह ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि 'मेरे शरीर में माता का भागरूपी जो रक्त एवं मांस है, उसे न रहने दिया जाए।' इसलिए अनेक प्रयत्न करके मैंने अपने शरीर को इतना सूखा दिया कि शरीर पर यदि चोट लग जाए, तो पानी की बूँद निकलती थी, पर रक्त नहीं निकलता था।' इस प्रकार, जो अच्छा होता है, वह तो बाल्यावस्था से ही पहचाना जाता है।
(कारियाणी-3)

3. मैं तो अनादि मुक्त ही हूँ, लेकिन किसी के उपदेशों से मैं मुक्त नहीं बना हूँ। और मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार को मैं इस प्रकार पकड़ लेता हूँ, जिस तरह सिंह बकरे को पकड़ लेता है! उसी भाँति मैं अन्तःकरण को पकड़े रहता हूँ और दूसरों को अन्तःकरण दिखायी भी नहीं पड़ता। अतः हमारा अनुकरण करके कोई समझे, कि हम भी विषयों का संसर्ग रखकर अलिप्त (निर्लेप) रह पाएँगे, तो समझ लेना कि जब नारद-सनकादिक जैसे भी इस प्रकार नहीं रह सके, तो दूसरों की तो बात ही क्या है? (गढडा प्रथम-18)

4. हमारा स्वभाव ऐसा है कि न तो हम किसी बात में जल्दी अप्रसन्न होते हैं और न तो शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु जब किसी

में, मुझे प्रसन्न करने या अप्रसन्न करने का स्वभाव दीर्घकाल तक देखता हूँ, तब उस पर प्रसन्नता या अप्रसन्नता होती है। परन्तु, किसी के कहने-सुनने से किसी पर प्रसन्नता या अप्रसन्नता नहीं होती। (गढडा मध्य-28)

5. मैं तो दत्तात्रेय, जड़भरत, नारद तथा शुकजी के सदृश दयावान हूँ। एक समय जब मैं पूर्वदेश (जगन्नाथपुरी) में नागा बाबाओं और वैरागियों की जमात के साथ रहा था, तब सभी वैरागियों ने मुझसे कहा कि 'चौलाई की हरी भाजी तोड़ो।' मैंने कहा कि 'इसमें तो जीव है, उसे हम नहीं तोड़ेंगे।' इस पर एक वैरागी ने म्यान से तलवार निकालकर डाँट-डपट की। फिर भी, हमने हरी भाजी नहीं तोड़ी। ऐसा हमारा दयामय स्वभाव है। फिर भी यदि कोई पुरुष भगवान के भक्त को

क्रूरदृष्टि से देखता हो और वह अपना स्वजन तथा स्नेही व्यक्ति ही क्यों न हो, तो भी हमें ऐसा मनोभाव हो आता है कि उस दुःख देनेवाले की आँखें फोड़ डालें और यदि वह हाथ द्वारा भगवान के भक्त को दुःखित करे, तो उसके हाथ काट डालें।' ऐसा उसके प्रति दुर्भाव हो जाता है। उस समय तो हमें कोई दयाभाव नहीं रहता। (गढडा मध्य-60)

6. हमें तो बिना कोई इच्छा किए भी पंचविषयों का संयोग बरबस रहा करता हो, किन्तु फिर भी हम उन्हें नहीं चाहते हैं और उन्हें पैरों से टुकरा देते हैं। और, जिस दिन से हमने जन्म लिया है, उस दिन से लेकर आज तक हमें किसी भी दिन जाग्रत अथवा स्वप्नावस्था में द्रव्य या स्त्री के सम्बंध में किसी भी प्रकार का अशुभ संकल्प हुआ हो, तो इन समस्त परमहंसों की सौगंध है! (गढडा मध्य-33)

कलश-43 : प्रकीर्ण

1. उस समय श्रीजीमहाराज बोले कि 'अच्छा, हम एक प्रश्न पूछते हैं।' तब सभी बोले, 'पूछिए महाराज!' तब श्रीजीमहाराज ने प्रश्न पूछा कि 'किसी पुरुष की बुद्धि तो ऐसी होती है कि जिस दिन से सत्संग किया हो, उस दिन से वह भगवान तथा सन्त के दोष देखा करता है, परन्तु वह दोष उसके भीतर टिकता नहीं, मिट जाता है। इसी प्रकार, उसे भगवान तथा सन्त के गुण तथा दोष दिखते-मिटते रहते हैं, फिर भी वह सत्संग छोड़कर कभी भी नहीं जाता। क्योंकि वह बुद्धिमान है, अतः वह मानता है कि 'ऐसे सन्त पूरे ब्रह्मांड में कहीं भी नहीं हैं, और इन महाराज के सिवा दूसरा कोई भगवान नहीं है।' इस समझ के कारण

वह सत्संग में अडिग रहता है, जबकि अन्य पुरुष की ऐसी बुद्धि है कि वह सन्त अथवा भगवान में कभी भी दोष देखता ही नहीं। इन दोनों की बुद्धि तथा दोनों का भगवान सम्बन्धी निश्चय भी एक समान है, किन्तु इनमें से एक की प्रवृत्ति दोष देखने की रहती है, जबकि दूसरा पुरुष इससे अलिप्त रहता है। यहाँ जो अवगुण-दोष देखता है, उसकी बुद्धि में कौन-सा दोष है? यह प्रश्न हम छोटे शिवानन्द स्वामी से पूछते हैं।' छोटे शिवानन्द स्वामी इसका उत्तर देने लगे, किन्तु वे यथेष्ट उत्तर न दे सके, तब भगवदानन्द स्वामी ने कहा, 'उस पुरुष की बुद्धि शापित है।' फिर श्रीजीमहाराज बोले, 'ठीक कहते हैं। इस प्रश्न का उत्तर यही है। जैसे जगत में कहते हैं न, कि 'इसको तो किसी की हाय लग गई है!'

ठीक इसी तरह उसने बड़े सन्त अथवा किसी गरीब का दिल दुखाया हो या माँ-बाप की सेवा नहीं की हो, इसी कारण उन्होंने इसे शाप दे दिया हो, जिससे उसकी ऐसी कुबुद्धि बनी हुई है। (कारियाणी-2)

2. भगवान का दृढ़ आश्रित हो और वह साधारण-सा दीन हरिभक्त हो, तो भी उसके समक्ष अहं-मान नहीं रखना चाहिए। किन्तु, जिसका मन सत्संग से कुछ मुकर गया हो, उसके सामने स्वाभिमान रखना चाहिए, लेकिन उसके आगे किसी भी प्रकार से झुकना नहीं चाहिए। (लोया-6)

3. मूर्ख पुरुष को जब उद्वेग होता है, तब वह या तो सोया करता है या रोता है या किसी से झगड़ा करने लगता है अथवा उपवास करता है। इन चार प्रकार से अपनी व्यग्रता

को टालने का प्रयास करता है। ऐसा करने पर भी यदि भारी उद्विग्नता बनी रही, तो आखिर में वह आत्महत्या भी कर लेता है। इस प्रकार मूर्ख पुरुष अपनी बेचैनी को दूर करने का उपाय करता है। परन्तु, ऐसा करने से दुःख नहीं मिटता, और कुस्वभाव भी नहीं मिटते। यदि वह समझपूर्वक दुःख तथा कुस्वभाव को टालना चाहे, तो वे टल सकते हैं। इसलिए, विवेकशील पुरुष ही सुखी होता है। (सारंगपुर-18)

4. मनुष्यदेह द्वारा न हो सके, ऐसा क्या है? जिसका भी हम नित्य अभ्यास करें, तो वह अवश्य सिद्ध हो जाता है। जैसे कुएँ के किनारे पर लगे कठिन पत्थर पर भी नित्य पानी खींचते रहने से नरम डोरी भी उस पत्थर को काट देती है। (गढडा मध्य-33)